International Journal of Research in Economics and Social Sciences (IJRESS)
Available online at http://euroasiapub.org/journals.php
Vol. 6 Issue 8, August 2016,
ISSN(O): 2249-7382, | Impact Factor: 6.225 | Thomson Reuters ID: L-5236-2015

सन्त तुकाराम के काव्य की धार्मिक दृष्टि से प्रासंगिकता

–**डॉ. अजायब सिंह,** सह–आचार्य, हिन्दी–विभाग,
मुकन्द लाल नेशनल, कॉलेज, रादौर (यमुनानगर)

संत तुकाराम ने अपने काव्य में धर्म एवं धर्म से संबंधित लगभग सभी विषयों पर अनेकानेक अभंग कहे हैं। धर्म एवं उसके तत्त्वों की सांगोपांग विवेचना का उद्देश्य लेकर वे काव्य रचना मे प्रवृत्त नहीं हुए, पर फिर भी आश्रम धर्म की मर्यादा, अतिथि सत्कार, सदाचरण, परोपकार, प्राणिमात्र के प्रति सहानुभूति एवं दया, आत्मसंयम, निष्काम कर्म और प्रारब्ध इत्यादि अनेक विषयों पर विचाराभिव्यक्ति हुई है। तुकाराम ने धम के अंतर्गत आत्मसंयम और चित्तशुद्धि पर अत्याधिक बल दिया है। उन्होंने कर्त्तव्य भावना से प्रेरित होकर, शुभाशुभ परिणाम का भार ईश्वर को सौंपते हुए, निष्काम भाव से कर्म करने का उपदेश दिया है। उनके अनुसार चित्तशुद्धि के अभाव में बाह्याचार का पालन करने वाला साधु–सन्यासी एक सामान्य गृहस्थ की अपेक्षा कहीं हीन है।

तुकाराम युगीन समाज में उच्चवर्णीय धर्म के नाम पर सामान्य लोगों का शोषण करते थे। तत्कालीन समाज में बाह्याडम्बर, धार्मिक, अंधविश्वास, मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, अवतार की कल्पना, बहुदेवोपासना तथा धार्मिक रूढ़ि–परम्पराओं का आचरण किया जाता था। तुकाराम ने आँखों देखी बात ही अपने अभंग का विषय बनाया है।

बाह्याडम्बर :

मध्ययुगीन समाज में उच्च वर्णीय लोगों को ही शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार होने के कारण सामान्य लोग शिक्षा से कोसों दूर रहकर अज्ञानी, अनपढ़ ही रहे थे। इसी कारण समाज में सामाजिक विषमता निर्माण हुई। उच्चवर्णीय लोगों ने अज्ञानी, अनपढ़ जनता को गुमराह करके उसका नाजायज फायदा उठाकर उनका धर्म के नाम पर शोषण किया।

संत तुकाराम ईश्वर के सगुण रूप के उपासक होते हुए भी उन्होंने समाज में प्रचलित बाह्य कर्मकांड का कड़ा विरोध कर केवल ईश्वर के नामस्मरण पर बल दिया है। तत्त्कालीन युग में तीर्थाटन और पवित्र जल से स्नानादि को भक्ति मार्ग का सहायक तत्व मानते हुए भी उन्हें उसकी उपादेयता पर संदेह है क्योंकि पवित्र जल के स्पर्श मात्र से ही मन के विकार दूर नहीं हो जाते। अगर मन ही मैला हो तो केवल शरीर को साबुन से मल–मलकर धोने से क्या लाभ? जैसे–

'काय कांशी करिती गंगा

भीतरी चंगा नाही तो।।'[1]

अर्थात–ईश्वर को प्राप्त करने के लिए काशी–तीरथ जाने की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर मनुष्य के अंतरमन में निहित है उसे तीर्थ में ढूँढने की आवश्यकता नहीं है। अतः अंतरंग में प्रेमभाव की आवश्यकता है।

तत्कालीन युगीन समाज में लोग तिलक, माला, मुद्रा एवं भगवा वस्त्र आदि धारण करते हुए स्वयं को ईश्वर का भक्त मानते थे। तुकाराम ने इन बाह्य उपकरणों का विरोध करते हुए आन्तरिक शुचिता पर बल दिया है। नामकरण की महिमा से अनभिज्ञ परंतु उच्च ध्वनि से शंखनाद करने वाले व्यक्ति को फटकारते हुए वे कहते हैं कि इतनी जोर से शंख बजाने का क्या लाभ? न जाने यह मूढ़ सबके मन मंदिर में निवास करने वाले भगवान विठ्ठल की उपासना क्यों नहीं करते? कपोल पर सुगंधित तिलक, गले में माला, हाथों में फूलों की टोकरी लेकर प्रभु की अर्चना के लिए जाने का यह ढोंग कैसा?[2]

तत्कालीन युग के समान ही आज का मनुष्य भी शरीर को तीर्थस्थान पर पवित्र जल से धोने से स्वयं को पुण्यवान समझता है। शरीर का ऊपरी हिस्सा धोने से क्या लाभ, अंतःकरण भीतर से काला या मैला ही रहता है। कुछ लोग ईश्वर की आराधना करने का बहाना करते हैं और मौन धारण करते हैं परन्तु ऐसे लोगों के इंद्रिय विषय–वासना के पीछे दौड़ते हैं। तुकाराम ऐसे लोगो से संबंध में कहते है– यह सब बाह्याचार से पेट भरने का मार्ग है इससे ईश्वर की प्रति संभव नहीं है–

'काय धोविले कातडे। काल कूट भीतरी कुडे।

लावूनि बैसे टाली। मन इंद्रिये मोकली।।''[3]

मध्युगीन भारतीय समाज में भगवे वस्त्र परिधान करके घूमने वाले साधुओं को मात्रा बढ़ गई थी। तुकाराम का मानना है कि, भगवे रंग के कपड़ों से ही यदि आत्मानुभव आता है तो सभी कुत्त आत्मानुभवी हो जाते क्योंकि उन्हें तो भगवा रंग ईश्वर ने ही दिया है। जटा दाढ़ी बढ़ाने से ईश्वर मिलता तो सभी सियार ईश्वर को प्राप्त कर लेते। जमीन खोद यदि मुक्ति मिलती तो सभी चूहे मुक्त हो जाते। अन्ततः वे कहते हैं कि, ऐसे बाहरी रूप बनाकर शरीर को व्यर्थ म पीढ़ा नहीं देनी चाहिए। जैसे–

'नाही निर्मल जीवन। काय करील साबण।'[4]

अर्थात–शरीर को बाहर से साबुन लगाकर धोने से क्या फायदा, जब तक अन्तरमन मैला हो। पाप से भरे देह का विचार न करके जो भूमि सदैव पवित्र है उसे शुद्ध करने से क्या लाभ है? तुकाराम के युग में ढोंगी कीर्तनकार प्रभु–प्रेम का झूठा प्रदर्शन कर जनता को पथभ्रष्ट कर रहे थे। ये कीर्तनकार लम्बे तिलक, सिर पर टोपी, गले में माला, कानों में तुलसी पत्र खोसकर, चोटी में कुशा बांधकर नाक के अग्रभाग पर हाथ

रखकर जप करने का ढोंग रचते दिखाई देते थे। वे कीर्तन करते हुए कभी रोते थे, कभी धरा पर गिर लोट लगाते थे। तुकाराम का कहना है कि, इनके ह्दय में ईश्वर प्रेम नहीं है आँखों का पानी व्यर्थ क्यों बहाते हो? उनकी यह समस्त क्रियाएँ पेट भरने के लिए हैं, तुकाराम का दृढ़ विश्वास है कि, ऐसे ढोंगी लोगों को इश्वर प्राप्ति संभव नहीं है। जैसे–

'टिला टोपी उंच दावी। जगी भी एक गोसावी।
तुका म्हंणे अवधे सोंग। तेथे कैचा पांडूरंगा।।'[5]

अतः ईश्वर की आराधना करते हुए मनुष्य को स्वयं के अंतरमन में झाँककर देखना आवश्यक है, केवल बाहरी प्रदर्शन से सच्चा साधक नहीं बन सकता। तुकाराम का कहना है कि जिसके मन का कुटिल भाव न हटा, उसके गले में माला पहनना ढोंग है। जिसमे धर्म, दया, क्षमा, शान्ति, नहीं वह सच्चा साधक, नहीं है। भक्ति की महिमा जिसे ज्ञात न हुई वह ब्रह्मज्ञान की बातें कह नहीं सकता। जिसने अपना मन काबू में नहीं रखा वह समाज को आकृष्ट कैसे कर सकेगा। जब तक मन की इच्छा का हम त्याग नहीं कर सकते तब तक संसार, घर–गृहस्थी में सुख प्राप्त करते रहना तुकाराम अनुचित समझते है।[6]

सारांशतः तुकाराम का केन्द्रीय विचार भक्ति है, भक्ति यदि शुद्ध–ह्दय से की जाती है, तो तीर्थ, व्रत, वारी उचित की सीमा में आ जाते है अन्यथा सब बाह्याडम्बर मिथ्या की ओर प्रवृत्त करने वाला है। वर्तमान युग में भी शरीर पर भभूत रमाकर पाप करने वाले और वैराग्य का आडम्बर करके विषय भोग में रत रहने वाले साधुओं की मात्रा बड़ी तादाद में है। आज भी लोगों की धारणा है कि, तीर्थाटन करने से मनुष्य के पाप धुल जाते है और मनुष्य पवित्र हो जाता है।

धार्मिक अंधविश्वास :

भारतीय समाज में धार्मिक अधंविश्वास की प्रथा–परम्परा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। तुकाराम के समय में भी धार्मिक अंधविश्वास का बोलबाला अधिक मात्रा में दिखाई देता है। तत्कालीन युग में ब्राह्मणों ने अपने स्वार्थ सिद्धि हेतु सामान्य लोगों को धर्म का पाठ पढ़ाकर उन्हें अंधविश्वास की खाई में ढकेलकर तमाशा देखने का कार्य किया है जो आज तक प्रासंगिक है।

तुकाराम कालीन समाज में शुभ–अशुभ की प्रवृत्ति काफी मात्रा में अंधविश्वासी दिखाई देती है। तत्कालीन युग में ज्योतिष अतीत में घटित घटनाओं तथा वर्तमान और भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं के बारे में उचित–अनुचित जानकारी दिया करते थे। तुकाराम का कहना है कि भविष्य बताने वाले लोगों से हम तंग आ चुके हैं। उन्हें आँखों से देखना भी वे पसंद नहीं करते। वे कहते भी है–

सांगो जाती शकुन। भूत भविष्य वर्तमान।

त्यांचा आम्हांसी कंटाला। पाहो नावडती डोला।'[7]

आज भी शुभ–अशुभ की धारणा लोगों मे बनी हुई है। विधवा नारी, बिल्ली तथा निपुत्रिक व्यक्ति की सूरज दृष्टिगोचर होने से अशुभ कार्य हाने की धारणा लोगों की बनी हुई है। अतः तत्कालीन युग में तुकाराम ने अपने अभंगों के माध्यम से जो चित्र प्रस्तुत किये हैं, वह आज भी प्रासंगिक है।

तुकाराम ने आँखों देखी घटनाओं का वृत्तांत अपने अभंगों में प्रस्तुत किया है। तत्कालीन युग में समाज में एकाध व्यक्ति की मृत्यु होने के पश्चात उसका पुत्र पक्वान्न बनाकर समाज को खिलाता था और ब्राह्मण के हाथों नदी किनारे पिंडदान करवाकर लेता है। यह एक धार्मिक अंधविश्वास ही है। तुकाराम का कहना है कि, मनुष्य जीवित रहते पिता को खाना नहीं खिलाता उसे भूखा ही तरसाता है। इसमें नाम ईश्वर का और पकवान स्वयं के पेट का। यह केवल धार्मिक अंधविश्वास ही है। तुकाराम कहते हैं कि, अपने माता–पिता की सेवा मनुष्य को जीवित रहते हुए ही करने में भलाई है। जैसे–

'भुके नांही अन्न। मेल्यावरी पिंडदान

हे तो चालवा चालवी। केले आपणीच जेवी

तुका म्हणे जड। मज न राखावे दगड।'[8]

लोगों में पिंडदान जैसी अंधविश्वासी प्रथा के संदर्भ में डॉ. आ.ह. सालुंखे का मत है–पितरों की पूजा भारतीय लोगों के धार्मिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। अपने पितर मृत पूर्वज पितृलोक में रहते हैं, उन्हें जीवित मनुष्य की तरह अनाज लगता है। श्राद्ध में ब्राह्मण को भोज देने से वह भोज पितरों को प्राप्त होता है ओर उनकी आत्मा को शांति मिलती है। जो लोग श्राद्ध नहीं करते उनके पितर भूखे ही रह जाते हैं ऐसी अंधविश्वासी धारणा भारतीय समाज में बनी हुई है।''[9]

प्राचीन काल से भारतीय समाज में ईश्वर से मन्नतें मांगने की परम्परा है जो आज तक प्रासंगिक है। एकाध निपुत्रिक स्त्री पुत्र प्राप्ति के लिए ईश्वर के सामने मन्नत मांगती हैं, जिसका प्रचलन आज आधुनिक युग में भी दिखाई देता है। तुकाराम ने देखा था कि लोग पत्थर को सिंदूर लगाकर उसे ईश्वर की संज्ञा देकर उसके सामने पुत्र तथा संपत्ति प्राप्ति के लिए मन्नत मांगते है। इसके बदले में वे उस सिंदूर जनित ईश्वर को मुरगा अथवा बकरे का बलि चढ़ाते हैं और उसके मांस नैवेद्य उन्हें दिखाते हैं। परंतु तुकाराम के अनुसार यह केवल दिखावटी अंधविश्वास है–

International Journal of Research in Economics and Social Sciences (IJRESS)
Available online at http://euroasiapub.org/journals.php
Vol. 6 Issue 8, August 2016,
ISSN(O): 2249-7382, | Impact Factor: 6.225 | Thomson Reuters ID: L-5236-2015

'सेंदराचे दैवत केले। नवस बोले तयासी।''[10]

अर्थात–सिंदूर के देवता को मन्नत मांगने से मनोकामना पूरी नहीं होती। तत्कालीन समय से लेकर आज तक सभी लोगों की धारणा बनी हुई है कि, तीर्थस्थल पर जाकर मुंडन करने के पश्चात् पाप नष्ट हो जाते हैं परंतु तुकाराम ने इसका विरोध करते हुए कहा है कि–जैसे मन मलिन हो तो बाहर से शरीर धाने से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता, वैसे ही जब सिंहस्थ पर्व के दिन आते हैं तब मनुष्य पवित्र स्थानों पर जाकर सिर का मुंडन करता है उससे किसी भी प्रकार का लाभ नहां हो सकता और यदि होता भी है तो वह दो–दो व्यक्तियों को जिसमें मुंडन करने वाला नाई और ब्राह्मण है। हमारी धारणा है कि मुंडन करने से पाप नष्ट होते हैं, परंतु यह हमारे मस्तिष्क का अंधकार है। पापों को नष्ट करने के लिए मन को शुद्ध रखना आवश्यक है यदि मन शुद्ध नहीं है तो पर्व के दिन किसी भी तीर्थस्थल पर जाकर केश मुंडन किया जो भी उसका कोई फायदा नहीं है। अर्थात मन शुद्ध रखने पर ही पुण्य की प्राप्ति हो सकती है। अंतरमन में पापों का पहाड़ रखकर ऊपर से मुंडन करने से कुछ नहीं होता। वे कहते भी हैं–

'बोडिले ते निघाले। काय पालटले सांग पहिले
पाप गेल्याची काय खून। नाहीं पालटले अवगुण।''[11]

अर्थात अवगण नष्ट हुए बिना यदि अंतःकरण में परिवर्तन नहीं हुआ तो फिर पाप नष्ट होने के प्रतीति तुम्हें कैसी हुई? सच्चे प्रेम से हरि भक्ति किये बिना मनुष्य जो कुछ भी करता है वह उसके लिए दुःखकारक ही सिद्ध होता है।

निष्कर्षतः प्रस्तुत विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है, कि तुकाराम ने अपने अभंगो के माध्यम से तत्कालीन युग के दर्शन करवाये हैं जो आज की घड़ी में भी प्रासंगिक बने हुए है। आज भी लोग अपने पापों का भार सर से उतारने के लिए तिरुपति जाकर मुंडन करवाते हैं। उनकी धारणा है, कि तिरुपति को बाल दान करने से पाप कम हो जाते ह। उसी प्रकार शुभ–अशुभ के लक्षण वर्तमान युग में भी देखने को मिलते हैं। तत्कालीन लोगों में षिक्षा का अभाव था, परंतु आज के वैज्ञानिक युग में भी लोगों में इस लक्षण का दिखना षर्मनाक है। अतः आज की घड़ी में भी तुकाराम का काव्य तत्कालीन युग के समान प्रासंगिक ही है।

मूर्तिपूजा :

महाराष्ट्र में वारकरी पंथ के संत तुकाराम ईश्वर के सगुण रूप की उपासना करने वाले संत रहे है। वे पंढरपूर के निवासी भगवान विठ्ठल की आराधना करते ह। डॉ. सुनील कुलकर्णी के अनुसार, ''पांडुरंग की

मूर्ति प्रत्यक्ष आकार संयुक्त साकार आकृति है। स–गुण याने सब गुणों से युक्त साकार याने आकार से युक्त। उस मूर्ति में पृथ्वी तत्व गुण रूप', वायुत्व का गुण–स्पर्श' और आकाश तत्त्व का गुण 'शब्द' है।''[12]

प्राचीन काल से लेकर आज तक हिन्दू धर्म में विभिन्न देवी–दवताओं की पूजा–अर्चना की जाती है। तुकाराम के काल से लेकर आज तक हिन्दू धर्म में मूर्तिपूजा की जाती है। तुकाराम मूर्तिपूजा में विश्वास रखते थे और उसमें भी भाव को सर्वाधिक प्राधान्य देते थे। उन्होंने तत्कालीन प्रचलित मूर्तिपूजा को जैसा के वैसा, बिना सोचे–समझे स्वीकार नहीं किया। उनकी इश्वर विषयक कल्पना पारंपारिक स्वरूप की अथवा रूढिबद्ध नहीं थी, यह हमें समझ लेना आवश्यक है। ईश्वर विषयक उनकी धारणा मनुष्य को एक विशिष्ट धरातल पर ले जाने वाली थी। यही कारण है कि ईश्वर इनकी दृष्टि में सखा मित्र बन जाता है, जो केवल पत्थरों एवं धातु की मूर्ति में स्थित नहीं होता, वह मनष्य के मन मे व्याप्त शुद्ध भाव के स्वरूप में होता है। इसी कारण ईश्वर के इस शूद्र एवं भ्रम उत्पन्न करने वाली धारणा से वे मनुष्य को मुक्त होने की सलाह देते है।''[13] तत्कालीन समाज में कुछ लोग बाहरी दिखावे के लिए मूर्तिपूजा करते थे। ऐसे लोगों को उपदेश करते समय वे कहते हैं– तुम्हारे अंतःकरण मे शुद्ध भाव नहीं है और तुम पाषण पीतल तथा अन्य आष्टांग धातुओं की मूर्तियों को या प्रतिमाओं की पूजा किस लिए करते हो? ईश्वर प्रत्यक्ष मूर्ति मे न होकर हमारी भावनाओं में होता है। जैसे–

'कासाया पाषाण पूजि तसा पितल। अष्ट धातु खल भावे विणं
तुका म्हंणे भाव नहीं करीसी सेवा। तेणें काय देवा योग्य होशी।''[14]

अर्थात् ईश्वर की भक्ति करते हुए अथवा ईश्वर की मूर्ति की पूजा करते हुए हमारी भावनाओं में ही साक्षात ईश्वर का निवास होता है। पत्थर तथा धातु तो निर्जीव होते है। 'ईश्वर' यह विषय ही भाव और श्रद्धा का है इसलिए ईश्वर की मूर्ति की पूजा करते हुए भाव तथा श्रद्धा का उसी के साथ होने में ही साधक की साधना की सार्थकता हो सकती है।

मूर्तिपूजा संबंधी एक महत्वपूर्ण सिद्धांत तुकाराम अपने कुछ अंभंगों के माध्यम से स्पष्ट करते हैं। ईश्वर जब जगत के घट–घट में बसा हुआ है तब प्रतिमा में क्यों उसका अस्तित्व नहीं है? सर्व विश्व ब्रह्म है तो प्रतिमा भी देव ही है जैसे–

'पाषाण देव पाषाण पायरी । पूजा एकावरी पाप ठेवी
सार तो भाव सार तो भाव।''[15]

तीर्थाटन :

तीर्थाटन भारतीय जीवन का अभिन्न अंग रहा है। हरिद्वार, जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम एवं द्वारका जैसे देश की चतु:सीमाओं पर स्थित चारों धामों के साथ काशी–कांची और अवन्तिका अर्थात उज्जयिनी जैसे तीर्थस्थलों के दर्शन के बिना जीवन अधूरा माना जाता है।

भारत के अतीत में झाँककर देखने के पश्चात एक बात स्पष्ट हो जाती है कि, उमें तीर्थाटन को प्रवृत्ति मुख्य रूप से प्रचलित थी। तुकाराम देख रहे थे कि, लोग अज्ञानतावश कैसे इस विधि को महत्व देते हैं। तत्कालीन समाज में चारों धामों की तीर्थयात्रा करके जो आता है उसे ईश्वर भक्त माना जाता था, परंतु वास्तव में ऐसे व्यक्तियों को ईश्वर की शक्ति का परिपूर्ण ज्ञान नहीं हो पाता था। यही अवस्था वर्तमान युग की भी है।

तत्कालीन समाज मे लोग विभिन्न धामों की तीर्थयात्रा करके, विभिन्न प्रकार की तपश्चर्या करके अंहकारी बन जाते थे। उनमें झूठा अभिमान संचित हो जाता था। वे स्वयं को भगवान ही समझने लगते थे। ऐसे लोगों को समझाते हुए तुकाराम कहते ह। जो लोग विधि निषेध के डोह में डूबते हैं उन्हें ईश्वर की प्राप्ति यथासंभव नहीं हो सकती। जैसे –

'तीर्थाटणे एक (एके) तपे हुबरती। नथिले धरिती अभिमान
तुका म्हणे विधि निषेधाचे डोही। बुडाले त्यां नाहीं देव कधी।'[16]

तुकाराम अत्यंत आग्रह के साथ 'वारी' अर्थात पैदल पंढरपुर यात्रा की महत्ता सूचित करते हुए कहते हैं– 'मेरे कुल में पंढरपुर की वारी' अर्थात यात्रा की जाती रही है मुझे अन्य किसी तीर्थयात्रा को जाने की आवश्यकता नहीं रह गई है। जैसे–

पढरीची वारी आहे माझे घरी। आणीक न करी तीर्थव्रत।'[17]

अर्थात जिसके पास पूर्वपुण्य का संचय होगा वहीं पंढरपुर का वारकरी हो सकता है। पंढरपुर की 'वारी' जिसके घर में परम्परागत है उनकी पगधूलि में श्रद्धा से मस्तक पर धारण करूँगा। जैसे –

पंढरीची वारी जयचिये घरी, पायधुती शिरी वंदीन त्याची।।[18]

संत तुकाराम की उपरोक्त पंक्तिया से न केवल उनका वारकरी होना सूचित होता है बल्कि एक सच्चे वारकरी की झलक भी हमें मिल जाती है।

आज तीर्थाटन करने वालों की मात्रा तो बढ़ चुकी है, परंतु लोगों को तीर्थ का मर्म ही समझ में नहीं आता। तुकाराम का मानना है कि, तीर्थाटन करने की अपेक्षा एक स्थान पर बैठकर सभी तीर्थस्थाना के मर्म को झाँककर देखने के पश्चात ही मनुष्य को तीर्थ का ज्ञान हो जाता है। यथा–

International Journal of Research in Economics and Social Sciences (IJRESS)
Available online at http://euroasiapub.org/journals.php
Vol. 6 Issue 8, August 2016,
ISSN(O): 2249-7382, | Impact Factor: 6.225 | Thomson Reuters ID: L-5236-2015

तीर्थीची अपेक्षा स्थली वाढे धर्म। जाणावे ते वर्म बहु पुण्य।''[19]

तत्कालीन समाज में भगवे वस्त्र धारण कर संन्यास लेने वाले और शरीर का मल निकालने के लिए नदियों में नहाने वालों की संख्या कम नहीं थी। मन में विषय वासना और भजन–पूजन का ढोंग करने वाले थे। महापुरूषों का स्वांग रचकर नीच कृत्य करते थे। अधर्मों का प्रचार करते थे। जटा धारण करते थे और शरीर पर भस्म लेपन करके मिष्ठान भक्षण करते थे।''[20] ऐसे पाखंडी मनुष्य पर तुकाराम ने कड़ा प्रहार किया है। तुकाराम शुद्ध चित्त में ईश्वर का नाम निवास मानते थे, वे देव को मन मे देखते थे। घूम–घूमकर तीरथ गाँवों में देव ढूँढना मूर्खता समझते थे। मृग के नाभी में तो कस्तूरी रहती है, पर उसके सुगंध की खोज में वह वन–वन मारा–मारा फिरता है।[21]

आज हम देखते हैं कि, भिन्न भिन्न तीर्थस्थानों में लाखों यात्री एकत्रित होते हैं और नदी में डुबकी लगाते हैं या फिर हाथ पैर धोकर लौट जाते हैं। मन ही मन तीर्थाटन के झूठे एवं खोखले गव में संतुष्ट होते हैं उन्हें ना ईश्वर के दर्शन होते हैं ना ही मोक्ष की प्राप्ति। वर्तमान युग में मनुष्य आनंद के साथ तीर्थयात्रा के लिए जाता है, नदी में नहाता है और ईश्वर की मूर्ति के सामने नतमस्तक होता है और तीर्थयात्रा सफल हो गई इस झूठे एवं व्यर्थ समाधान में लौटता है ऐसे लोगों के लिए तुकाराम कहते हैं–''जाऊनियां तीर्था तुवा काय केले। चर्म पक्षाकीले वरी–वरी।''[22] अर्थात तीर्थयात्रा को जाकर लोग शरीर धोने के अलावा अन्य कुछ भी नहीं करते। जिस प्रकार करेला शक्कर में घुल मिल जाएँ फिर भी उसकी कड़वाहट नहीं जाती, उसी तरह अंतःकरण में दया, क्षमा, शांति आदि गुण जब तक नहीं आते तब तक कितनी भी तीर्थ यात्रा की तथा पूजा–अर्चना की तो भी कुछ काम की नहीं है।

तत्कालीन युग में तीर्थाटन को जाने वालों की मात्रा कम थी परंतु आज इसमें इजाफा हुआ है। आज लोगों को यातायात की सुविधा होने के कारण बड़ी तादाद में लोगों की भीड़ तीर्थस्थानों पर बढ़ रही है। इसी भीड़ के कारण तीर्थस्थानों पर भगदड़ मच रही है, और उसमें आज सामान्य लोगों की जान जा रही है, परंतु उससे उत्पन्न शून्य मात्र है। तुकाराम से लेकर सभी संत महात्माओं ने ईश्वर तीर्थस्थानों पर न होकर हर मनुष्य के अंतरमन में होने का संदेश दिया है।

अवतारवाद :

मानव शरीर धारण कर ईश्वर अथवा किसी अन्य देवता का पृथ्वी पर अवतरण 'अवतार' कहा जाता है। दूसरे शब्दों में परमात्मा की विशेष शक्ति का माया से संबंद्ध होकर प्रकट होना ही अवतारण या अवतार कहा जाता है।[23] प्राचीन काल से लेकर आज तक भारतीय समाज में ईश्वर के अवतार की धारणा प्रासंगिक है। संत तुकाराम ने भी अवतारवाद की परिकल्पना को मान्य करते हुए कहा है

धर्म रक्षावया अवतार घेसी। आपुल्या पालीसी भक्तजना।[24]

अर्थात–हे विठ्ठल तुमने धर्म और भक्तों की रक्षा के लिए इस धरातल पर विभिन्न अवतार लिए हैं। तुकाराम आगे कहते है–हे ईश्वर तुमने अंबऋषि के लिए दस जन्म लेकर अलग–अलग अवतारों में अधार्मिक दुष्टों का नाश किया है। 'अर्थात ईश्वर ने जो दुष्ट लोग, परपीड़ा निर्माण करते हैं, साधु–संतों को यातना पहुँचाते हैं उनका सर्वनाश करने के लिए प्रभु ने अवतार लिया था। राक्षसों ने और कंस ने लोगों को यातना पहुँचाई थी इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने जन्म लेकर उन दुष्टों का नाश किया। वे कहते हैं–

'अवतार केला संहाराया दुष्ट। करिती हे नष्ट परपीडा
परपीडा करी दैत्य कंसराव। पुधे तो ही भाव आरंभिला''[25]

अर्थात–भगवान श्रीकृष्ण ने कंस और दुष्टों का नाश करने के लिए इस धरातल पर अवतार लिया था। उनका मानना है, कि भगवान श्रीकृष्ण ने ही आगे चलकर विठ्ठल के रूप में अवतार लेकर अपने संत–सज्ज्नों की रक्षा की है। वे आगे का दृष्टांत देते हुए कहते है–कंस ने देवकी के सात पुत्रों को मार डाला, इसी कारण श्रीकृष्ण ने देवकी के कोख से जन्म लेकर कंस को समाप्त कर डाला। उन्होंने कंस जैसे आसुरी वृत्ति के लोगों का नाश करके संत–सज्जनों की रक्षा करने के लिए ही यह अवतार धारण किया था जैसे–

'कंसराये गर्भ वधियेले सात। म्हणोनि गोकुलवासी आले अनंत
ध्यावया अवतार झाले हेचि निमित्त। आसुर संहारुनी तारावे भक्त'[26]

इस तरह भगवान विष्णु ने राम, श्रीकृष्ण तथा पांडुरंग के रूप धारण करते हुए दुष्ट लोगों का संहार कर डाला। संत तुकाराम अवतार की कल्पना को मानते हुए धर्म पर जब संकट आता है तब वे किसी–न–किसी का रूप धारण करके धर्म की रक्षा करके दुष्टों का संहार करते हैं। आज के वैज्ञानिक युग में भी विष्णु के अवतारों की सराहना की जातो है। कहा जाता है कि उन्होंने दस अवतार लिये थे। जिसमें–मत्स, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, श्रीकृष्ण, बुद्ध और कल्कि आदि। तुकाराम ने श्रीराम और कृष्ण ने अवतार लेकर रावण और कंस जैसे अत्याचारी का नाश करने की बात की है। आज भी प्रवचनों या कीर्तना में इसी की चर्चा की जाती है।

बहुदेवोपासना :

हिन्दू धर्म में देवी देवताओं की संख्या बड़ी तादाद में उपलब्ध है। इसमें तैतींस करोड़ देवी–देवता माने जाते है। संत तुकाराम ने उन सबके अस्तित्व को नकारकर केवल पांडुरंग के अतिस्तत्व को स्वीकार किया है। उन्होंने अपने समय में देखा था कि, इस बहुदेववाद के कारण भी धर्म में अनेक अंध परम्पराएँ

प्रचलित हो रही थी। कोई भी व्यक्ति पत्थर को सिंदूर लगाकर उसकी पूजा करने लगता और अपने आपको महंत पजारी मानने लगता। वे कहते हैं'– *कासया पुजावी अनेक दैवते। पोट भरे तेथे लाभ नाहीं।'*[27]

अर्थात अनेक देवी–दवताओं की पूजा क्यों की जाती है जहां देव ही पेट भरने के पीछे लगे हुए ह। जो भगवान अपना पेट भरने के लिए रोता है और बलिदान मांगता है जो अपने पेट की भूख मिटाने के लिए दूसरों को कष्ट देता है, वह अपने भक्त को क्या देगा? भक्तों को उनसे क्या लाभ होगा? ऐसे भगवान की भक्ति करना दिनभर कष्ट करके जैसे–तैसे अथवा एक छोटे से डिब्बे में व्याप्त जल से, जिससे की ओठ तक भीगना मश्किल है। प्यास बुझाने की उपेक्षा करने जैसा है। तुकाराम कहते है कि, ऐसा शूद्र देवता सिंदूर के लेप से अपना मुख झाँप लेते हैं, उसका बोझ अपने शरीर पर डालता है ऐसे पत्थर को जो मनुष्य भगवान मानता है वह मूर्ख एवं धोखेबाज होता है।''[28] तत्कालीन समाज के लोग बहुदेवताओं की उपासना किया करते थे। तुकाराम ने इस स्थिति को देखते हुए लोगों को उपदेश किया है कि इस प्रकार अनेक देवी–दवताओं के पीछे लगने से सच्चे अर्थ में ईश्वर की प्राप्ति कदापि संभव नहीं है। वे कहते है–

'आपूला तो एक देव करुनि ध्यावा,
ये (ले) णे बिना जीवा सुख नव्हे।'

अर्थात मनुष्य ने अन्यत्र कहीं पर भी न भटकते हुए एक ही ईश्वर की आराधना करनी चाहिए। उसके सिवाय मन को शांति नहीं मिल सकती।

वर्तमान युग में भारतीय समाज में लोग विभिन्न देवी–देवताओं की पूजा अर्चना करते है। देहातों में ग्राम देवताओं की कतार देखने को मिल जाती है। तुकाराम कालीन समाज से लेकर आज तक अनेक साधु संतों ने उपदेश देकर लोगों में परिवर्तन करना चाहा है। परंतु समाज में कदापि परिवर्तन नहीं हुआ। अतः संत तुकाराम का काव्य आज की घड़ी में भी उतना ही प्रासंगिक है जितना तत्कालीन युग में था।

सारांशतः कहा जा सकता है, कि तुकाराम का विरोध किसी भी धर्म के लोगों के साथ नहीं था। उन्होंने अपने ईश्वर की भक्ति करते हुए तत्कालीन समाज में जो बाह्याचार दिखाई दिया उसी की उन्होंने निंदा की है। एक प्रकार से तुकाराम गाथा' तुकाराम की संवेदना का काव्यात्मक इतिहास है। उन्होंने लोकभाषा की नस पकड़कर व्यावहारिक दृष्टांतों से मनुष्य जीवन पर भाष्य लिखा। जीवन में हर्ष–खेद, सुख–दुःख के सैकड़ों प्रसंगों और जीवनानुभवों को उन्होंने मार्मिक ढंग से वाणी दी है। आज की घड़ी में तुकाराम काव्य की प्रासंगगिकता इसमें है कि आज भी तीर्थाटन की परम्परा चालू है, इतना ही नहीं तो उसमें दस गुणा इजाफा हुआ है। आज मूर्तिपूजा, श्राद्धविधि, केश मुंडन, मिन्नतें, धार्मिक अंधविश्वास, धर्म के नाम पर शोषण आदि का प्रासंगिक रूप मिलता है। इसलिए आज की घड़ी में भी तुकाराम का काव्य प्रांसगिक है।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences (IJRESS)
Available online at http://euroasiapub.org/journals.php
Vol. 6 Issue 8, August 2016,
ISSN(O): 2249-7382, | Impact Factor: 6.225 | Thomson Reuters ID: L-5236-2015

संदर्भ सूची :

1. सं. डॉ. गोपालराव बेणारे–सार्थ श्रीतुकारामाची अभंग गाथा, अभंग क्र. 109, पृ. 47
2. डॉ. श्रीमती रमेश सेठ–तुकाराम एवं कबीर–एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 252
3. सं. डॉ. गोपालराव बेणारे–सार्थ श्रीतुकारामाची अभंग गाथा, अभंग क्र. 1555, पृ. 345
4. वही अभंग क्र. 381, पृ. 100
5. वही अभंग क्र. 2077, पृ. 151
6. तुकारामाची अभंग गाथा, अभंग क्र. 96
7. सं. डॉ. गोपालराव बेणारे–सार्थ श्रीतुकारामाची अभंग गाथा, अभंग क्र. 948, पृ. 217
8. वही अभंग क्र. 1942, पृ. 422
9. डॉ. आ. ह. सालुंखे–विद्रोही तुकाराम, पृ. 99
10. सं. डॉ. गोपालराव बेणारे–सार्थ श्रीतुकारामाची अभंग गाथा, अभंग क्र. 121 (2) पृ. 50
11. डॉ. सुनील कुलकर्णी–कबीर और तुकाराम के काव्य में प्रगतिशील चेतना, पृ. 225
12. वही पृ. 216
13. डॉ. आ. ह. सालुंखे–विद्रोही तुकाराम, पृ. 170
14. सं. डॉ. गोपालराव बेणारे–सार्थ श्रीतुकारामाची अभंग गाथा, अभंग क्र. 2054, पृ. 446
15. वही अभंग क्र. 1553, पृ. 345
16. सं. डॉ. गोपालराव बेणारे–सार्थ श्रीतुकारामाची अभंग गाथा, अभंग क्र. 1599, पृ. 355
17. प्रभाकर सदाशिव पण्डित–महाराष्ट्र के संतों का हिन्दी काव्य, पृ. 67
18. सं. डॉ. गोपालराव बेणारे–सार्थ श्रीतुकारामाची अभंग गाथा, अभंग क्र. 1656, पृ. 366
19. वही अभंग क्र. 3935, पृ.
20. वही अभंग क्र. 4482, पृ.
21. वही अभंग क्र. 4483, पृ.
22. सं. डॉ. गोपालराव बेणारे–सार्थ श्रीतुकारामाची अभंग गाथा, अभंग क्र. 1131, पृ. 255
23. तनसुखराम गुप्त, हिंदू धर्म परिचय, पृ. 41
24. सं. डॉ. गोपालराव बेणारे–सार्थ श्रीतुकारामाची अभंग गाथा, अभंग क्र. 3007, पृ. 635
25. वही अभंग क्र. 3912, पृ. 870–71
26. वही अभंग क्र. 4133, पृ. 950–51
27. वही अभंग क्र. 1708 (3), पृ. 376–77
28. डॉ. सुनील कुलकर्णी–कबीर और तुकाराम के काव्य में प्रगतिशील चेतना, पृ. 206